卐 ओ३म् 卐

सुबोध कहानियां ही कहानियां

बात छोटी अर्थ बड़ा

1.5

जो सीखा है उसे सदा सिखाते चलो।
दीप से दीप सदा जलाते चलो॥

विचारक व संग्रहकर्ता तथा प्रकाशक

रामपथिक वानप्रस्थाश्रम

१०६-नदी मार्ग, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)-२५१००२

-: संशोधन कर्ता :-

पं० वेद प्रकाश शास्त्री

फाजिल्का (पंजाब)

सत्य साहित्य प्रचारक

विमल प्रकाश गुप्ता

(मोमबत्ती वाले)

३६८ कृष्णापुरी, मुजफ्फरनगर (उ०प्र०)

मूल्य ५) रुपये

प्रचारार्थ सौ प्रतियों पर मात्र २००) रुपये

सुनने पढ़ने से बुद्धि का विकास हुआ करता है क्योंकि मनीषियों के दिव्य विचारों को सुनने पढ़ने से विवेक बढ़ता है, फिर बचपन में सभी के मां-बाप, दादा-दादी आदि से कहानियां सुनने की बड़ी चाह रहती है क्योंकि ज्ञान बढ़ता है, परन्तु आज-कल ऐसी कहानियां खूब छपती हैं जिनसे संशय व भ्रम उत्पन्न होता है फिर वह शब्द वाक्य क्या हुए तो अर्थ का अनर्थ न करे अथवा बुद्धि पर ताला लगाये, विवेक, तर्क, युक्ति, प्रमाण को न माने जैसा कि रोचकता के नाम अनर्गल किस्से कहानियों में होता है।

चार, छ, आठ हाथ तथा कहीं शिवजी के ३ व ५ सिर तो रावण के १० परन्तु टांगे दो ही सबकी क्यों ?

गणेश जी का जन्म, फिर पिता द्वारा सिर काटना, फिर एक हाथी का सिर काटकर लगाना क्या ठीक है ? अच्छा होता पहले कटे सिर को ही लगाया जाता ताकि हाथी का न लगाना पड़ता।

आपको इस प्रकार की कथा या कहानियों पर संशय होता या नहीं ?

सच्चाई छिप नहीं सकती, कभी बनावट के असूलों से।
खुश्बू आ नहीं सकती, कभी कागज के फूलों से॥

पहला प्रयास है कहानी पुस्तक का यदि कहीं भी आपको संशय, बनावट प्रतीत हो तो आप निसंकोच लिखें। बुद्धि बढ़े तथा दिल दिमांग कुंठित न हो। हां ! दो लेख विषय से बाहर भले ही हैं परन्तु बात वह जो कटे नहीं, वरन आपका शुद्ध चिन्तन बढ़ाने के वास्ते विचार दिये हैं।

पढ़ो समझो बनो महान, क्योंकि आप हैं महान।

नम्र निवेदक

[illegible]

१–खरा उतरना चाहता हूं

आग के लाल-लाल अंगारे धधक रहे हैं। क्रान्तिकारियों की एक पार्टी उस पर अपना भोजन बना रही है। उस पार्टी के सदस्य राजगुरु भी हैं। उन्होंने आग में तपाई हुई तेज लाल रंग की एक सलाई तीन बार अपनी छाती पर चिपका दी। मांस के जलने से छन-छन की आवाज हुई। यह देखकर एक अन्य साथी ने उनके हाथ से सडासी छीन कर कहा—'क्यों राजगुरु यह क्या तमाशा कर रखा है? अपने ही हाथों से अपना मांस क्यों जला रहे हो?'

'कुछ नहीं मित्र, केवल यह परीक्षा कर रहा था कि इस प्रकार पुलिस वालों से सताने पर भी मैं विचलित तो नहीं होऊंगा। मैं उसमें खरा उतरना चाहता हूं,' राजगुरु का उत्तर था।

सभी साथी ठहाका लगा कर खिलखिला उठे। कितनी तमन्ना भरी बातें होती थीं उन क्रान्तिकारियों में।

२–कौन से न्यायालय की?

'तुम देशद्रोही हो' सरकारी वकील चीखकर क्रान्तिकारी भगत सिंह से बोला और भगत सिंह वकील की यह चीख सुनकर ठहाका लगाकर हंस पड़े। 'भगत सिंह, तुम इस प्रकार फूहड़ों की तरह हंसकर न्यायालय की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचा रहे हो—वकील फिर गरजा।

इस पर भगत सिंह फिर ठहाका लगाने लगे और जब ठहाका रुका तो बोले—'वकील साहब, मैं तो जीवन भर इसी तरह से हंसता खिलखिलाता रहूंगा। आज जो आप मेरे हंसने की शिकायत इस न्यायालय से कर रहे हो। परन्तु जब मैं एक दिन

फांसी के तख्ते पर भी ठहाका लगाऊंगा, आप कौन से न्यायालय में शिकायत करेंगे ?'

यह सुनकर लोग दंग रह गये। वकील और न्यायाधीश एक दूसरे का मुंह ताक रहे थे, आश्चर्य चकित थे इस जीवत दर्शन पर।

३–परीक्षा में उत्तीर्ण

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री महावीर सिंह को वेलारी जेल में लोहे की लम्बी काली खिड़की से बांध दिया गया। शरीर के सारे वस्त्र फाड़ दिये और बेंतों से नितम्ब की खाल भी उधेड़ दी गई। खून के कतरे धार बन कर गिर रहे थे और मांस के छोटे-छोटे टुकड़े बेंत के साथ चिपटे चले आते थे।

सजा भुगत कर उन्होंने अपने मित्र क्रान्तिकारी श्री जयदेव कपूर को एक सन्देश भेजा—

'भैया, तुमने जो अग्नि परीक्षा राजमहेन्द्री जेल में पहले ही पास कर ली, मैंने भी वह परीक्षा वेलारी जेल में काफी अच्छे नम्बरों से पास कर ली है।'

४–अपनी-अपनी दृष्टि

आठ दस युवक भ्रमणार्थ चल पड़े। उनमें कुछ थे मनचले और कुछ सुशील। एक युवक ने सामने से आती युवतियों पर व्यंग्य बाण मारना शुरू कर दिया। दूसरे साथी ने कहा—'ऐसा करना उचित नहीं। ये भी हमारी बहनें हैं।'

तीसरा बोला—'मेरी बहनें ऐसे बनठन कर नहीं चलतीं कि दूसरों की नजरें स्वतः ही निहारने लगें।'

चौथे साथी ने कहा—'युवतियों का हार सिंगार हाव भाव

और प्रदर्शन करते हुए चलना ही युवकों को कदाचरण के लिए विवश करता है। यदि युवतियाँ सादे लिबास में चलें तब क्यों किसी की दृष्टि जायेगी ?'

पांचवें मित्र ने अपनी बात स्पष्ट की—'यदि युवक भी नीची नजर करके चलें तो क्या हानि है ? 'दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्' दृष्टि को पवित्र करके कदम रखना चाहिए अर्थात् सोच समझ कर चलना चाहिए। छटे ने पहले साथी से कहा—'यह कटाक्ष बन्द करो। तुम्हारी छोटी बहन भी इन्हीं में है।'

इतना सुनते ही उसने शर्म से अपनी गर्दन नीचे कर ली। कुछ भी कहते न बना। भला अब क्या उत्तर देता।

तभी दूसरे मित्र ने समझाया—'हम सभी युवतियों को बहन, मां के रूप में देखें तो मन में दोष ही न आए।'

सातवें मित्र ने कहा—'जिसका जैसा चश्मा होगा उसको वैसा ही दृश्य नजर आयेगा। पीले चश्मे से सभी पीले और काले से सभी काले ही दीखते हैं। ठीक ही है—'जैसा मन वैसी दृष्टि।' इसलिए—मनः पूत समाचरेत्।

मन को शुद्ध पवित्र करके आचरण करो।

५—नीची नजर

दो रूपसियां बाजार से गुजर रही थीं कि कई पुरुषों की नजरें उन्हें ताकती हुई प्रतीत हुई। तभी उनमें से एक बोली—'बहन, कई पुरुष निर्लज्ज क्यों होते हैं जिनकी गिद्ध दृष्टि स्त्रियों पर ही लगी रहती है। इनके घर में भी तो मां, बहन, बेटियां होती हैं।'

दूसरी ने उत्तर दिया—'बहन, यदि हमीं सादे वस्त्रों में बिना

सिंगार सदा नीची नजरें करके चलें जैसे मैं हूं तब किसी की भी नजर न उठेगी। जब हमारी दृष्टि नीची होगी तो सामने वाले के भावों का हमें बोध ही न होगा।'

पहली स्त्री ने कहा—'आपका दृष्टिकोण ठीक है। आज से क्या, अभी से मैं नीची नजर करके चलने का व्रत लेती हूं।'

'आपकी गुण ग्रहण की शक्ति प्रशंसनीय है' पहली स्त्री ने कहा, 'जो गुण ग्रहण को सदा तत्पर रहता है वही संसार में कुछ कर सकता है। महर्षि दयानन्द आर्य समाज के चौथे नियम में कहते हैं—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

६—व्यक्तित्व का चिन्ह

स्वामी विवेकानन्द भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रचार करते हुए अमेरिका के शिकागो शहर में पहुंचे। एक दिन बाजार से गुजर रहे थे। उन्हें गेरुवे वस्त्रों में देखकर एक अमेरिकन स्त्री ने अपने पति से कहा— यह कैसा पहनावा है ?'

पति कोई उत्तर दे उससे पहले ही स्वामी बोल पड़े—'बहन जी, आपके देश में दर्जी ही मनुष्य के व्यक्तित्व को बनाता है, लेकिन भारत में सदाचार एवं सद्व्यवहार ही व्यक्तित्व का चिन्ह माना जाता है, वस्त्रों से नहीं।'

इतना कहना था कि वे दंम्पति चुपचाप चले गये। कुछ कहते न बना।

७—दयानन्द की अश्रुधारा

एक विधवा स्त्री थी। भयंकर बीमारी के कारण उसका इकलौता नन्हा बालक चल बसा। कहां थे इतने पैसे उस बेचारी

के पास जो उसका इलाज करती। यहां तक कि कफन के लिए भी पैसे न थे। क्या करती ? आखिरकार और कोई उपाय न देखकर अपनी साड़ी का आधा हिस्सा फाड़ा और उसी का कफन बनाकर नदी में प्रवाह करने के लिए चल पड़ी। नदी के किनारे पहुंची, कफन उतारा और बच्चे को नदी में डाल दिया। कफन को लेकर वापस चल पड़ी।

महर्षि दयानन्द यह दृश्य देख रहे थे। उस स्त्री के निकट गए और बोले—'मां, क्या कारण है तुमने कफन भी उतार लिया ?'

वह महिला फफक-फफक कर रो पड़ी और अपनी गरीबी की सारी दास्तान ऋषि के आगे सुना दी।

वह कहने लगी—'क्या करूं ? कहां जाऊं ? किससे कहूं ? घर में खाने को रोटी नहीं। तन ढकने को कपड़ा नहीं। फिर क्या करती जो कफन न उतार लेती। अपनी साड़ी का आधा हिस्सा फाड़ा था। अब जाकर साथ में जोड़ लूंगी।"

अब भी उसकी आंखों में अविरल अश्रुधारा बह रही थी। थमने का नाम ही न लेती थी।

उस महिला की ऐसी दयनीय दशा सुनकर ऋषि का हृदय करुणा से भर गया और वह स्वयं रो पड़े। कहने लगे—"हे भगवान्! ऐसी दुर्दशा! इस भारतीय आर्य नारी की! पता नहीं ऐसी कितनी नारियां होंगी जो इस निर्धनता की बेड़ी में जकड़ी अपनी जिन्दगी के दिन काट रही हैं। प्रभो! कृपा करो। इनका उद्धार करो।"

इसके बाद महर्षि ने नारी उद्धार के लिए अनेक प्रयत्न किए। कन्या गुरुकुल खोलने की प्रेरणा दी। बाल विवाह का

निषेध किया। विधवा विवाह के लिए प्रेरित किया। पुरुषों के बराबर अधिकार दिया। उन्होंने कहा—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

जहां स्त्रियों की पूजा होती है वहां देवता आनन्दित होते हैं।

८–मेरा धर्म था

रामगोपाल नगर से अपने किसी सम्बन्धी को मिलने के लिए पहली बार गांव को चला। रास्ते में घना जंगल था। उस समय आजकल की तरह सवारी की सुविधा न थी। कभी-कभी कहीं ही सवारी मिलती थी। उस समय दुर्भाग्यवश कोई सवारी न मिली। अतः वह पैदल ही चल पड़ा। वह अकेला ही हंसते गाते मस्ती में चला जा रहा था कि अचानक ही भालू को सामने से आता देखकर उसकी सिट्टी पिट्टी गुम हो गई। वह घबरा गया। मुंह से चीख निकल गई। बचने के लिए इधर उधर देखा पर और कोई उपाय न देख कर एक वृक्ष पर चढ़ गया परन्तु भालू भी उसी वृक्ष के नीचे बैठ गया।

रामगोपाल ने जोर की आवाज लगाई—बचाओ, बचाओ तभी किसी युवती ने पुकारा, घबराओ नहीं। मैं रक्षा हेतु आ रही हूँ। धीरज रखो। कुछ दूर रह जाने पर उसने गुलेल से कई छोटे-छोटे पत्थर रीछ पर चलाए जो उसके कान, मुंह और पेट पर जोर से लगे। अचानक ही इस प्रकार पत्थर लगने से वह डर कर वहाँ से भाग गया।

युवति वृक्ष के नीचे आ गई और उस घबराए व्यक्ति से बोली—"अब आप निर्भयता पूर्वक नीचे उतर आएं।"

नवयुवक वृक्ष से उतरा और कहा—"बहन, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। यदि आप मेरी रक्षा न करतीं तो मेरी जान

जोखिम में पड़ जाती। इसके लिए मैं आपका बहुत आभारी रहूँगा।"

युवति ने उत्तर दिया—' इसमें धन्यवाद की क्या बात, यह तो मेरा कर्त्तव्य था, मेरा धर्म था जो प्रभु कृपा से पूरा हुआ।"

नवयुवक ने अपने थैले से कुछ मिठाई निकाली और साथ ही ५० रुपये युवति को देते हुए कहा—'बहन! यह तुच्छ भेंट स्वीकार करो।'

धन्य हैं वे नारियाँ जो पर-रक्षा में अपने जान की बाजी लगा देती हैं।

९—आत्मसमर्पण

गोमुख से झरने के रूप में निकली गंगा कलकल निनाद करती, इठलाती, लहरों के रूप में निर्मल हास्य करती हुई तीव्र गति से बहती हुई निरन्तर आगे बढ़ती जा रही थी। मार्ग में झरनों, नदियों, नालों का जल संग लेती हुई ऋषिकेश, हरिद्वार, कानपुर, काशी, प्रयाग आदि तीर्थों को पार करके भागती जा रही थी।

उसके दोनों तटों पर स्थित पर्वतों, वृक्षों, लताओं ने कहा—"बहन गंगे! पिता हिमालय की हरी भरी सुन्दर सुहावनी प्यारी गोद को त्याग कर, हम जैसे वृक्ष, लताओं और गुल्मों का साथ छोड़कर तेजी से भागती हुई जाकर उस खारी जल वाले समुद्र से क्यों जा मिलती हो? जब तक तुम समुद्र से नहीं मिलती हो तब तक लोग तुम्हारा सम्मान करते हैं, पूजा और अर्चना करते हुए दीपदान करते हैं, आरती उतारते और गाते हैं। जल को शुद्ध पवित्र और निर्मल जानकर घरों को ले जाते हैं, मन्दिरों में चढ़ाते हैं। लेकिन सागर से मिलते ही तुम्हारा वह व्यक्तित्व, मान-

सम्मान और महत्व सभी कुछ समाप्त हो जाता है। तुम्हारा तो कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता। फिर भी तुम उससे मिल जाती हो ?"

गंगा पहले मन्द-मन्द मुस्कराई फिर गम्भीर होकर बोली—"नारी की शोभा पतिगृह में ही है। अच्छा-बुरा जैसा भी हो, उसी के साथ निर्वाह में ही जीवन की सार्थकता है। आत्म समर्पण करने में ही जीवन की सफ़लता है। अत: मैंने भी अपने आपको मिटा कर, अपने पृथक अस्तित्व को समाप्त कर अपना सर्वस्व सागर को समर्पित कर दिया है।"

वे ऊंचे-ऊंचे वृक्ष और पर्वत एक साथ बोल पड़े—"गंगे! तू धन्य है, धन्य है तेरा आत्म समर्पण।"

१०—साहस और निर्भीकता

रात्रि का घना अन्धकार। चारों ओर छाया हुआ सन्नाटा। कभी-कभी कुत्तों और झींगुरों की ध्वनि इस नीरवता को भंग कर रही थी।

अचानक ही डाकुओं ने एक सेठ के घर पर धावा बोल दिया। कुछ डाकुओं ने अड़ोस-पड़ोस के सभी मकानों के दरवाजों को बाहर से बन्द कर दिया। एक ने मुहल्लें के चौकीदार को काबू कर लिया। कई हवाई फायर करके लोगों को आतंकित करते हुए कहा—"कोई घर से बाहर न निकले वरना गोलियों से भून दिया जायेगा। जो जहां पर है वहीं पर बैठा रहे, और चालाकी दिखाने की कोशिश न करे।"

उस परिवार में ५० वर्षीय सेठ, ४५ वर्षीया उसकी पत्नी, २५ और २२ वर्ष के दो नौजवान बेटे तथा १८ वर्षीया बेटी थी। अकस्मात् सम्मुख डाकुओं को देखकर सभी हक्के-बक्के रह गये।

काटो तो खून नहीं। नौजवान बेटों का साहस जवाब दे गया।

डाकुओं के सरदार ने कड़कती हुई रोबदार आवाज में कहा– "सेठ, कहां है, चाबियों का गुच्छा, धन और आभूषण ? जल्दी से मेरे हवाले कर दो वरना खैर नहीं।"

सेठ जी और भी घबरा गए। कांपती हुई आवाज में कहा— "मेरे पास चाबी नहीं है।"

इतना सुनना था कि डाकू सरदार ने बन्दूक की हत्थी सेठ के सिर पर दे मारी। सेठ जमीन पर गिर पड़ा। घबराया तो पहले ही था। इस प्रहार से बेहोश हो गया।

यह दृश्य देखकर उसकी पत्नी ने चाबियों का गुच्छा फेंकते हुए कहा—"यह रहा गुच्छा और सेफ उस तरफ कमरे में है।"

सरदार चाबियों का गुच्छा उठाने के लिए झुका ही था कि उस महिला ने एकदम से बन्दूक छीनकर उस पर ही वार कर दिया। डाकू इसके लिए तैयार न था। अतः इस हमले से वह जमीन पर गिर पड़ा और उठने योग्य न रहा।

वह महिला चण्डी का रूप धारण कर चुकी थी। उसने दूसरे डाकुओं को भी ललकारा। एक ने हिम्मत करके सरदार को उठाने का प्रयास किया कि उसी महिला ने एक ही गोली से उसका काम तमाम कर दिया। वह कटे पेड़ की तरह धराशायी हो गया। अब किसी डाकू की हिम्मत न थी कि वह आगे बढ़े। वे सभी बगैर लूटपाट के अपनी जान की खैर मनाते हुए भाग खड़े हुए।

उस देवी के संकेत से सभी के दरवाजे खोले गए। सभी उस देवी की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। उसके साहस, वीरता और निर्भीकता की बड़ाई कर रहे थे।

वह महिला अपने पुत्रों से बोली—"चलो, तुम्हारे पिता जी में हिम्मत नहीं थी परन्तु तुम दोनों तो जवान थे। कुछ कर सकते थे। पर तुम्हारी हिम्मत भी जवाब दे गई।

चार महीने बाद सरकार की ओर से उस महिला को उसके साहस एवं निर्भीकता के लिए 'वीरांगना पुरस्कार" से सम्मानित किया गया। अन्त में वह अपने ग्राम की प्रधान भी चुनी गई।

ऐसी वीरांगनाओं पर हमें सदैव ही गर्व रहा है।

११–चुभते कांटे मन के।

बालिका हो या युवति अथवा वृद्धा, सभी के कानों में कांटे शोभायमान होते हैं। ये कांटे चुभते नहीं अपितु प्रिय लगते हैं परन्तु पैरमें लगा कांटा सदा ही चुभता रहता है। चाहे वह कीकर का हो या बेर का अथवा अन्य कोई। लेकिन क्या आप इस बात पर विश्वास करेंगे कि कभी-कभी कान का कांटा भी चुभने लगता है और जी का जंजाल बन जाता है। बात ऐसी ही है। मेरे जीवन में एक ऐसी घटना घटी जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

कमलेश का विवाह था। घर पर काफी रौनक थी। सगे सम्बन्धी आए हुए थे। शहनाइयां बज रही थीं। विवाह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। दुल्हन की विदाई की तैयारियां हो रही थी। लेकिन यह क्या, बारात की विदाई से कुछ समय पूर्व ही एकदम से सन्नाटा छा गया। परिवार के चेहरे उदास थे क्योंकि नववधू कमलेश हेतु वरपक्ष की ओर से लाए गए कांटे कहीं गुम हो गये थे। बहुत ढूंढा गया पर कहीं न मिले। बारात की विदाई लेट हो रही थी। पिता ने तुरन्त ही उन कांटों से मिलते-जुलते कांटे सुनार से मंगवा कर बेटी को विदा किया। परन्तु वे कांटे मन में चुभते अवश्य रहे।

कमलेश के पति ने भी उसके लिए और कांटे बनवा दिये थे। अत: धीरे-धीरे जैसे जैसे दिन बीतते गए, कमलेश भी इस घटना को भूलती गई।

कमलेश की एक सहेली थी प्रभा, अत्यधिक घनिष्ठ सहेली। जब वह कमलेश के विवाह में सम्मिलित हुई और उसकी ससुराल से आए गहने देखे तो उनमें चमकते हुए कांटे भी थे। कांटे देखकर उसकी आंखें भी चमक उठीं। वह सोचने लगी—'काश ! ऐसे ही कांटे मेरे पास भी होते।" उसके मन में लालच आ गया। वह उन्हें पाने का उपाय सोचने लगी। मौका पाकर कांटे चुरा लिए। किसी को पता भी न चला।

समय बीतता रहा। प्रभा ने कांटे उस समय चुरा तो लिए थे परन्तु बाद में सोचा—"आह ! यह मैंने क्या किया ?" वह अब पश्चाताप की आग में जलने लगी। उसने यह अनुभव किया कि कांटे चुराकर मैंने अच्छा नहीं किया। अपनी सहेली को ही धोखा दिया। अब वह बहुत पछता रही थी। लेकिन करे तो क्या करे ? कुछ समझ न आ रहा था।

कमलेश और प्रभा दोनों सहेलियां कई बार मिलीं भी परन्तु कमलेश से जिक्र करने की हिम्मत न हुई। कहे तो कैसे कहे ? बात कहां से शुरू करे ? कभी सोचती सारी असलियत कमलेश को बता दूं पर हिम्मत जवाब दे गई।

एक बार ऐसा संयोग हुआ कि जब दोनों सहेलियां मिलीं तो प्रभा हिम्मत करके कमलेश से बोली—"बहन कमलेश ! एक बात तुमसे कहना चाह रही हूं बहुत दिनों से पर कह नहीं पा रही हूं कि कहीं बुरा न मान जाओ।"

कमलेश ने कहा—"नहीं बहन, बुरा क्यों मानूंगी। तुमसे

अच्छी सहेली भला मेरी और कौन हो सकती है ? क्या तुमसे मैंने कभी कोई बात छिपाई है ?"

"नहीं, तुमने तो नहीं छिपाई बल्कि छिपाई तो मैंने ही है।

कसूरवार तो मैं हूँ जो अब तक तुम से सच्चाई छिपाकर रखी और तुम्हारी पक्की सहेली भी बनी रही—"प्रभा ने उत्तर दिया।

कमलेश प्रभा का मुंह ताके जा रही थी कि आज इसे क्या हो गया है, यह क्या कहना चाह रही है ? आखिर वह बोली—"बहन, तुम कहना क्या चाहती हो ? कुछ बताओ भी या ऐसे ही पहेली बुझाती रहेगी।"

प्रभा ने शान्त एवं गम्भीर होते हुए कहा—"बहन, तुम्हारे कांटे मैंने ही चुराये थे। उस समय पता नहीं मुझे क्या हो गया था ? मैं तो लोभ मोह में ऐसी अन्धी हो गयी थी कि मैंने अपना पराया भी न सोचा। अक्ल पता नहीं कहां चरने चली गई थी। मैं इसके लिए बहुत शर्मिंदा हूँ। जो चाहे मुझे दण्ड दो।"

इतना कहकर उसने वह कांटे निकाले और कमलेश के हाथों में रख दिये। साथ ही उन कांटों के बराबर बने हुए और कांटे भी उसको दे दिये। यह देखकर कमलेश नें पूछा, "यह और कांटे कैसे ?"

प्रभा ने उत्तर दिया, "यह मेरे प्रायश्चित के रूप में हैं, पाप का दण्ड है। इतने दिनों तक तुमसे मैंने यह बात छिपाये रखी।"

कमलेश ने उन कांटों को अस्वीकार करते हुए कहा—"फिर तो ये कांटे मुझे भी चुभते रहेंगे। अत: मैं इन्हें स्वीकार नहीं कर सकती। तुम इन्हें वापस ले जाओ।"

प्रभा—"मैं इन्हें अब नहीं ले जा सकती क्योंकि जब तक

तुम इन्हें स्वीकार करके मेरा अपराध क्षमा न करोगी तब तक ये कांटे मुझे चुभते रहेंगे।"

अब क्या हो इन कांटों का? दोनों ही स्वीकार करने को तैयार नहीं। अन्ततः यह निर्णय हुआ कि इन्हें वेचकर प्राप्त धन अनाथालय को दान कर दिया जाय। दोनों ने इस सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

इस प्रायश्चित ने प्रभा के मन के कलुष को धो दिया था। अब वे प्रशनचित्त थी। उनमें एक दूसरे के प्रति स्नेह पूर्ववत् बना रहा।

१२–सच्ची मित्रता

सुरेश का पिता अत्यधिक धनी था। पैसे की कोई कमी नहीं। जीवन विलासिता से परिपूर्ण। काम करने को नौकर चाकर। बस जवान हिलाने को देर थी कि नौकर सेवा में हाजिर।

इसके विपरीत रमेश का पिता अत्यन्त निर्धन। रोटी के लिए मोहताज। दिन भर कड़ी मेहनत के बाद ही रोटी नसीब होती थी।

सुरेश और रमेश बचपन के साथी थे। धन का बहुत बड़ा अन्तर होते हुए भी उनके दिलों में कोई अन्तर नहीं, कोई भेद नहीं और न ही कोई दूरी। धन उनकी मित्रता में कोई फर्क उत्पन्न न कर सका। दोनों में गहरी दोस्ती थी क्योंकि वे एक ही कक्षा में कक्षा एवं स्कूल के छात्र थे।

दसवीं कक्षा तक तो दोनों साथ-साथ पढ़ते रहे परन्तु ग्यारहवीं कक्षा में सुरेश ने तो प्रवेश ले लिया जबकि रमेश न ले सका। क्योंकि आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी न होने के कारण उसका पिता उच्च कक्षा की फीस नहीं भर सकता था। किताबों

तथा अन्य आवश्यक खर्चे के लिए पैसों का प्रवन्ध कर सकना. पिता के लिए बहुत मुश्किल था।

सुरेश को जब रमेश के प्रवेश न ले सकने के कारण का पता चला तो उसका मन करुणा से भर गया कि एक मित्र केवल इसलिये न पढ़ सके क्योंकि उसके पास पैसे नहीं हैं। सुरेश ने अपने पिता जी से बातचीत की और रमेश के घर की आर्थिक स्थिति से अवगत कराते हुए सहायता के लिए प्रार्थना की। पिता जी रमेश के विचारों से सहमत हो गये और सभी प्रकार की सहायता देना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार रमेश को ग्यारहवीं कक्षा में प्रवेश मिल गया।

सुरेश के पिता जी के सहयोग से रमेश ने एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और सुरेश ने भी। सुरेश अपने पिता के काम में हाथ वंटाने लगा। व्यापार का काम था। धीरे-धीरे सुरेश ने सारा काय संभाल लिया।

रमेश का जीवन निर्वाह के लिए कोई साधन न था। अतः नौकरी के लिए प्रयत्न करने लगा। नौकरी मिली भी तो घर से बहुत दूर। जाना तो था ही क्योंकि इसके अतिरिक्त और कोई चारा न था। इसलिए वह नौकरी से वाहर चला गया।

दोनो के विवाह हो गये। घर-गृहस्थी में उलझ कर दोनों एक दूसरे को भूल गये।

कठिन परिश्रम, पक्का इरादा और सच्ची लगन के कारण रमेश उन्नति करता गया और ऐसा समय भी आया जब वह एक शिक्षाधिकारी वन गया। ३० वर्षों के बाद स्थानान्तरण होकर वह अपने नगर में आ गया।

'सब दिन रहत न एक समान' की उक्ति के अनुसार सुरेश

का व्यापार धीरे-धीरे मन्द होता गया। जिससे आर्थिक दशा कमजोर हो गई। परन्तु इतना होते हुए भी वह अपनी झूठी शान दिखावा और ठाठबाट शान शौकत से छुटकारा न पा सका।

एक दिन अवसर पाकर रमेश उससे मिलने गया तो वास्तविक स्थिति छिपी न रह सकी। उसे वह दिन याद आ गए जब उनकी उदारता और सहयोग के कारण वह पढ़ने में समर्थ हो सका था।

रमेश ने उन्हें समझाया। बाहरी आडम्बर में क्या रखा है? वास्तविक परिस्थितियों से समझौता करके चलो। फिजूल खर्ची बन्द करो। व्यापार बन्द हो गया तो और कोई छोटा मोटा काम करो। छोटा काम करने में अपमान कैसा? अपमान तो काम न करने में है। उधार लेना बन्द या बिल्कुल कम कर दो।

रमेश ने सुरेश के प्रति अपने कर्त्तव्य को निभाया। वह उनका कृतज्ञ तो था ही। अब उचित अवसर जानकर उसकी सहायता के लिए आगे आया। सुरेश का पुत्र नरेश था। नरेश की शिक्षा का भार उसने स्वयं वहन किया। सुरेश की भी गुप्त रूप से सहायता करने लगा। जिससे उस परिवार को एक बहुत बड़ा सम्बल मिल गया।

रमेश ने केवल आर्थिक रूप से ही सहयोग नहीं किया अपितु मानसिक और बौद्धिक रूप से भी समस्त परिवार को जागृत किया जिससे वे रूढ़िवाद, अन्धविश्वास और आडम्बर की चहार दीवारी से बाहर निकल सकें।

एक दिन सुरेश ने रमेश से कहा—"मित्र! आपने परिवार के व्यक्तियों में तो जागृति ला दी परन्तु अभी स्त्रियों की विचार-धारा में परिवर्तन आना बाकी है। यदि आप भाभी जी को साथ

लाएं। कुछ आना जाना हो तो घर की महिलाओं में भी एक नई चेतना आ जाय।"

रमेश ने इस सुझाव को सहज स्वीकार कर लिया। रमेश की पत्नी सुशीला उनके घर आने जाने लगी जिससे उन्हें बहुत प्रेरणा मिली। अब वही परिवार पूर्णरूपेण संगठित सुसस्कृत एवं सुव्यवस्थित बन गया था और पुनः उन्नति की ओर अग्रसर हो चला था।

परिवार में अपूर्व परिवर्तन देखकर सुरेश भावविभोर हो उठा। उसने रमेश को गले लगा लिया और इस उपकार के लिए कृतज्ञता प्रकट करने लगा—"यदि आपने इस प्रकार मार्गदर्शन न किया होता तो परिवार की स्थिति इतनी जल्दी सुदृढ़ न हो सकती।"

रमेश ने उत्तर दिया—"यदि आपके पिता जी मेरी सहायता न करते तो क्या मैं इस स्थिति में पहुंचने लायक बन सकता जहाँ पर मैं आज हूँ ? मित्र। यह संसार एक लेन-देन की मण्डी है जहां व्यक्ति कुछ लेता भी है और कुछ देता भी है। भला मैं तुम्हारे इस उपकार को कैसे भूल सकता हूँ ?"

इतना कहकर रमेश ने सुरेश को गले लगा लिया। उनकी मैत्री अब और भी गहन से गहनतर तथा सुदृढ़ से सुदृढ़तर होती जा रही थी। दोनों एक दूसरे के प्रति कृतज्ञ थे।

१३—जीवन दान

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि मित्रता विपरीत स्वभाव वालों में भी हो सकती है जैसे श्रीराम शान्त स्वभाव के थे और लक्ष्मण उग्र स्वभाव के, पर दोनों में असीम प्रेम था।

इसी प्रकार सुशील और सत्यप्रिय के स्वभाव में भी वैषम्य

था। आचार, व्यवहार और आहार में कोई समानता न थी परन्तु इतना होते हुए भी दोनों में गहरी मित्रता थी। एक दूसरे के लिए जान देने को तैयार रहते।

सुशील का सिद्धान्त था—'खाओ, पियो और मौज करो।' जबकि सत्यप्रिय का कहना था—'दूसरों को खिलाकर खाओ। परोपकार करो। जीवन को शुद्ध, पवित्र और निर्मल बनाओ। खानपान ठीक रखो।

सुशील नाम से ही सुशील था पर मांस, शराब, अण्डों का सेवन उसके जीवन में रच बस गया था। जुआ खेलना आम बात थी। आलस्य और प्रमाद का भण्डार था।

सत्यप्रिय का आहार व्यवहार सात्विक था। कोई दुर्गुण नहीं। अपने कर्त्तव्य के प्रति सदैव सचेत रहता। कभी सोचता सुशील का भी सुधार हो जाए और कभी मन में विचार आता, मुझे उसके व्यक्तिगत जीवन से क्या लेना देना। इसी ऊहापोह में काफी समय निकल गया। आखिरकार उसने यही निश्चय किया कि इसका सुधार अवश्य करना चाहिए। क्योंकि सच्चा मित्र वही है जो सदैव भला ही सोचे, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे।

सत्यप्रिय ने उसे बड़ी नम्रता से शराब आदि के दोष बताए। प्रेम, तर्क और मुक्ति से समझाया। कई बार नशे की स्थिति में अपने घर पर ले जाता। उसकी पत्नी भी सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न करती। समझाती-बुझाती। बुरे साथियों से दूर रहने के लिए प्रेरित करती।

सुशील की पत्नी भी उसके अवगुणों से परिचित थी। उसके स्वभाव में इन्हीं दुर्गुणों के कारण कर्कशता आ गई थी। इतना होते हुए भी मन में उसके प्रति प्रेम था। वह यह अवश्य चाहती

थी कि वह इन दुर्गुणों से अवश्य बचे। वह केवल सोचती ही न थी अपितु छुटकारा दिलाने के लिए निरन्तर प्रयास भी करती रहती थी।

इन तीनों की मेहनत रंग लाई। धीरे-धीरे सुशील में परिवर्तन आने लगा। अब वह सुशील बनने का प्रयत्न कर रहा था। मांस, शराब, जुआ आदि छोड़ दिया। उसके बच्चे लापरवाही के कारण आवारा होने लगे थे। उनकी ओर भी उसका ध्यान गया। अब उनके लिए भी वह समय निकालने लगा जिससे बच्चे भटके हुए मार्ग से सुपथ पर आ गये।

इस प्रकार सत्यप्रिय और उसकी पत्नी के सत्प्रयत्नों से एक परिवार को मानों जीवन दान मिल गया था। उनमें एक नये जीवन का संचार हो गया था। सुशील तथा उसकी पत्नी ने सत्यप्रिय के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा—यदि आप राह न दिखाते तो यह जीवन कहां से मिलता। सच्चा मित्र वही है जो सत्पथ पर ले चले।'

१४—लागी लगन

एक बगीचे में तमाम तरह के फूल खिलते हैं, रंगबिरंगे, सुगन्धित और गन्धहीन भी। एक मन को मोह लेता है तो दूसरा तिरस्कार का पात्र बन जाता है। ऐसे ही एक मां की कई सन्तानें होती हैं। उनमें से कई माता-पिता के नाम को रोशन कर देती हैं और कई बट्टा लगा देती हैं।

कई बार माता-पिता आर्थिक विषमता, अभाव, अशिक्षा के कारण बच्चों का सही मार्ग दर्शन नहीं कर पाते तो कभी-कभी स्वार्थवश भी सन्तान को अपने से दूर नहीं कर पाते। शिक्षा या नोकरी के लिए बाहर नहीं भेजते। चन्द सिक्कों के लिए 'कलियों

को मसल देते हैं।

कृष्ण का जन्म एक ऐसे निर्धन परिवार में हुआ था जिसे दो जून की रोटी मिलनी बहुत मुश्किल थी। मजदूरी करके अपना गुजारा करते थे। कभी काम मिल जाता और कभी फाके करने पड़ते।

कृष्ण पांच वर्ष का हो गया। उसके हम उम्र बच्चे स्कूल जाते। नहाते, धोते, साफ कपड़े पहनते, इधर उधर चहकते रहते। कृष्ण उनको ललचायी नजरों से देखता तो देखता ही रह जाता।

कृष्ण के मन में आया कि मैं भी स्कूल जाऊं। पर कैसे? किताबें नहीं, बस्ता नहीं, न ही है वर्दी। क्या करे? मां से कहा– 'मां, मैं भी स्कूल जाऊंगा।"

मां कहने लगी—"बेटे, तू भी स्कूल जायगा। मेरा मुन्ना राजा भी स्कूल जायेगा।"

पर दूसरे ही क्षण उसका खिला चेहरा मुरझा गया। कहने को तो कह दिया कि हां तू भी स्कूल जायेगा लेकिन घर के हालात क्या पढ़ाई की आज्ञा देंगे? कहने लगी—'बेटे, स्कूल तो जायगा लेकिन कहां हैं किताबें, कापियां? क्या ऐसे ही स्कूल जायगा?"

बच्चे के अन्दर पढ़ने की भावना जागृत हो चुकी थी। लगन लग गयी थी। हठ के आगे मां को झुकना पड़ा। पिता से कहा— "बच्चे की पढ़ाई का प्रबन्ध करो।"

पिता ने कहा—"जहां खाने और रहने का ठिकाना न हो, वहां पढ़ाई कैसे हो सकती है? पढ़ाई तो अमीरों के लिए है। हमारा काम तो मजदूरी है वही यह भी करेगा। रहने दो पढ़ाई।"

मां ने समझाया—"बच्चा है। हठ करता है किसी स्कूल में दाखिल करवा दो। इसका भी मन रह जायगा।"

कहने सुनने पर पिता मान गया। प्राइमरी स्कूल में दाखिल करवा दिया। लेकिन कृष्ण चौथी कक्षा तक ही पढ़ सका। आगे खर्च न दे सकने के कारण पिता ने उसे चाय की दुकान पर बर्तन धोने के लिए लगवा दिया। कृष्ण के बहुत मिन्नत करने पर भी पिता न माना। माँ ने कहा—"मैं किसी के बर्तन धो लूंगी, घास काट कर बेच लूंगी। खर्चा मैं देने की कोशिश करूंगी पर इसे पढ़ाओ अवश्य। लेकिन पिता के कानों में जूं तक न रेंगी। वह अपनी बात से टस से मस न हुआ। काम बनता न देख कर कृष्ण को मजबूर होकर चाय की दुकान पर काम करना ही पड़ा।

पिता के अज्ञान, हठधर्मी या विवशता के कारण कृष्ण की पढ़ाई बन्द हो गई। चाय की दुकान पर काम करता। मालिक के बच्चों को पढ़ते, स्कूल जाते और खेलते हुए देखता तो आहें भरता, दु:खी होते हुए सोचता—काश! मैं भी इसी प्रकार पढ़ सकता। परन्तु मजबूरी थी क्या करे? उसने मालिक से कहाकि अपने पुत्र सुभाष के साथ उसे भी कुछ देर पढ़ लेने दिया करे तो मालिक ने कहा—"यह दूकान है स्कूल नहीं। चलो, काम करो।"

धीरे-धीरे सुभाष और कृष्ण में मित्रता बढ़ती गई। समय मिलने पर दोनों साथ-साथ खेलते पर कभी-कभी। क्योंकि कृष्ण का सारा समय दूकान पर ही निकल जाता था।

एक दिन सुभाष ने पिता से कहा—"मुझे गली के बच्चे मारते हैं, साथ खेलने नहीं देते। अत: कृष्ण को कुछ देर के लिए भेज दिया करें। पहले तो उसने आना-कानी की लेकिन बात में विवश होकर भेजना पड़ा।

दोनों में प्रेम बढ़ता गया। वे घनिष्ट मित्र बन गये। कृष्ण सुभाष से कहने लगा—"भैया, पिता जी से कहो मुझे भी पढ़ने के लिए कुछ सहयोग करें।"

सुभाष मान गया। पिता से कहा। पिता सुभाष की बात सुनकर अचकचा गया। बहाने बनाए पर पुत्र स्नेह के आगे उसे झुकना पड़ा। सहयोग के लिए तैयार हो गया। लेकिन साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया कि अब वेतन नहीं मिलेगा।

मालिक खर्च देने के लिये तैयार हो गया है यह जानकर कृष्ण बहुत खुश हुआ। उसकी प्रसन्नता की सीमा न रही। उसने निश्चय किया कि अब खूब मन लगाकर पढ़ूंगा।

जब माता को इस बात का पता चला तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उसके मन की मुराद पूरी हो गई थी। पिता भी खुश था कि चलो इसी बहाने बेटा पढ़ जायगा।

सेठ की सहायता से कृष्ण ने आठवीं की कक्षा पास कर ली। इसके बाद उसने सुभाष से कहा—"अब भी नियमित रूप से स्कूल नहीं जा सकता क्योंकि पिता जी बीमार रहते हैं। माँ पर ही सारी घर की जिम्मेवारी है। तीन छोटे भाई बहन भी हैं। कहीं नौकरी करके प्राइवेट पढ़ता रहूँगा। आपने इतना सहयोग किया यही क्या कम है ?"

मालिक को जब यह ज्ञात हुआ कि घर की विषम परिस्थितियों के कारण कृष्ण पढ़ाई छोड़ कर नौकरी करना चाहता है तो उसने कृष्ण को अपने पास बुलाया और कहा—"तुम्हें नौकरी करनी है और मुझे दूकान का कार्य बढ़ जाने से एक सहयोगी की आवश्यकता है। यदि तुम मेरी सहायता कर सको तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

कृष्ण को और क्या चाहिए था अंधे को दो आंखें। वह सहर्ष तैयार हो गया। उसे अन्यत्र नौकरी नहीं ढूंढनी पड़ी।

मालिक ने कहा—"तुम तो मेरे यहां काम करोगे ही, तुम्हारी

माता जी को कुछ रुपये देकर भैंस ले देता हूं जिससे वह दूध मेरी दूकान पर वेच दिया करेगी। इस प्रकार उनका घर का कार्य भी चलता रहेगा और उन्हें इधर उधर कोई काम भी नहीं ढूंढना पड़ेगा, मजदूरी नहीं करनी होगी, न किसी का मुंह ताकना पड़ेगा।

मालिक का यह सुझाव भी ठीक था। अत: कृष्ण की मां भी तैयार हो गई क्योंकि उसे अब किसी के घर काम कहीं करना पड़ेगा।

कृष्ण के पिता में मानों एक नई जान आ गई क्योंकि कृष्ण कुछ कमायेगा भी और साथ हो पढ़ाई भी करेगा। घर में भैंस होने से कुछ दूध भी मिल जायेगा तो मेरे स्वास्थ में भी सुधार होगा। यह सब कृष्ण की लगन का ही फल था जो अब मिलने जा रहा था।

कृष्ण ने अब मालिक की दुकान का कार्य पूर्णरूपेण संभाल लिया था। मैट्रिक भी पास कर ली थी। परिश्रम, ईमानदारी, सच्ची लगन और मालिक के सहयोग से वह निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर होता जा रहा था।

१६–सत्य कथा

योगराज का जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। उसका मित्र था रामशाह। वह एक निधन परिवार में जन्मा था। दोनों मित्रों में आर्थिक विषमता होते हुए भी मित्रता में कोई अन्तर नहीं आया। इकट्ठे ही खेले, शिक्षा पाई और फिर घर गृहस्थी में रम गये।

पच्चीस वर्षों के बाद योगराज अत्यधिक बीमार हो गया। बीमारी लम्बी होती गयी। डाक्टर, वैद्य, हकीम जिसने जो कुछ

बताया, उसका इलाज किया परन्तु बीमारी ने जाने का नाम ही न लिया। 'मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की' की उक्ति योगराज पर पूणरूपेण चरितार्थ हो रही थी। शरीर सूख कर काँटा हो गया था। चलना-फिरना मुश्किल। उसने अब पूरी तरह चारपाई ही पकड़ ली थी। घर की लेई पूंजी समाप्त होने लगी। गहने भी गिरवी रखे गए या बेच दिये गये। हाथ तंग रहने लगा। लेकिन करते भी क्या? और कोई चारा न था।

रामशाह को नौकरी मिली घर से काफी दूर। जब कभी घर आता, योगराज से अवश्य मिलता। इस बार जब आया तो उसे बीमार देखकर बहुत दुःखी हुआ। योगराज का चेहरा अजीब सा हो गया था। टट्टी पेशाब चारपाई पर ही करने के कारण चारों ओर दुर्गन्ध ही फैली रहती। लोग निकट आने से कतराते रहते। योगराज को सोया देखकर सभी चले गये पर रामशाह बैठा था कि उसी समय उसने देखा कि योगराज कुछ बड़बड़ा रहा है। उसने ध्यान से सुनने की कोशिश की। योगराज कह रहा था—"आप मेरा बकाया धन क्यों नहीं देते। जब तक यह नहीं दोगे, मैं यहां से नहीं जाऊंगा। चुकता हो जाने के बाद मैं स्वतः ही चला जाऊंगा। अभी लेना शेष है।"

योगराज की मां ने भी ये आधी अधूरी बातें सुनी तो उन्होंने रामशाह से कहा—"पूछो, यह कह क्या रहा है? क्या लेना है? कितना लेना है? किससे लेना है?"

तभी योगराज फिर बोल पड़ा—"तुम लोग मानते नहीं हो कभी तो मानोगे।"

रामशाह ने कहा—"चाची जी आप ही पूछें। मुझे तो इसकी बातें बड़ी अजीब, अटपटी और रहस्यमयी लग रही हैं।"

योगराज की मां ने पुकारा—"बेटा, ओ बेटा, बेटे योगराज!" योगराज की तन्द्रा टूटी तो बोला—'माता जी क्या बात है?"

मां ने कहा—"बेटे, अभी क्या बोल रहे थे ? क्या लेना है ? किससे लेना है ?"

"मां, भला मैं यह कैसे कह सकता हूं कि आप से कुछ लेना है ? मैंने तो कोई विशेष कमाई भी नहीं की। बस आपसे खर्चवाया ही है। इतने लम्बे समय से बीमार हूं। आप ही मुझ पर खर्चा कर रही हैं। मैं तो चारपाई पर ही पड़ा रहता हूं। आपका यह ऋण मैं कैसे उतार सकता हूँ ? मैंने यह तो कुछ कहा ही नहीं। मैं तो सो रहा था। जब स्वस्थ हो जाऊंगा तो अवश्य ही आपका यह ऋण उतार दूंगा। जो बीमारी पर धन खर्च हुआ है उसे चुकता करूंगा।"

यह सुनकर मां चुप रही।

रामशाह ने अपने पिता से योगराज की बातों का रहस्य पूछा तो पिता ने कहा कि योगराज के पिता से युक्ति पूर्वक पूछना कि कितना धन बीमारी पर खर्च हो गया है।

योगराज के पिता ने बताया कि करीब १५ हजार रुपये खर्च हो चुके हैं। अगले दिन सूचना मिली कि देहावसान हो चुका है।

रामशाह के पिता ने कहा कि अब फिर ढंग से अवसर मिलने पर पूछना कि कितना और खर्च हो चुका है। पूछने पर पता लगा कि आठ हजार और खर्च हुआ है।

योगराज की कही गई बातें कि—'इतना पहले ले लिया है और इतना लेना शेष है। पूरा होने पर चला जाऊंगा'—सच साबित हुईं।

पूर्वजन्म के योग से पिता से कर्ज लेना था वह पुत्र बनकर ले लिया और पूरा होने पर चला गया। यह मेरे ताये के पौत्र की कहानी है। अपनी आंखों देखी और कानों सुनी बिल्कुल सत्य कथा है। (श्री राम पथिक) घर का नाम था रामशाह।

बादशाह की सादगी

मिस्र के वादशाह अबूबकर की सादगी संपूर्ण संसार में प्रसिद्ध थी। अथाह धन-संपत्ति होने के बावजूद अबूबकर फकीरों की तरह रहा करते थे. यहां तक कि रोटी पर घी लगाना भी उन्हें पसंद नहीं था। जब वह सूखी रोटी खाते, तब जाहिर है कि बेगम को भी सूखी रोटियां खानी ही पड़ती थीं।

सरकारी खजाने के मालिक होते हुए भी बादशाह अबूबकर हर महीने केवल दो दिरहम वेतन लेते।

एक दिन बेगम ने सख्त नाराजगी से कहा, "आप इतनी बड़ी सल्तनत के मालिक हैं। क्या जिंदगी भर रूखी रोटियां ही खाते रहेंगे ? मैं तो यह सोचकर ही रह जाती हूं। क्या हम लोग कभी पकवान-मिठाई चख भी नहीं सकेंगे ?"

बादशाह अबूबकर ने हंसकर जवाब दिया, "अपने मुल्क में बहुत-से लोग ऐसे हैं जिन्हें रूखी रोटियां भी नसीब नहीं होतीं। हमें खुदा का शुक्रगुजार होना चाहिए कि कम-से-कम रूखी रोटियां तो मिल रही हैं। हां, रही बात अच्छे पकवान-मिठाई खाने की, तो रोकता कौन है ? हर महीने दो दिरहम वेतन घर में आता तो है। उसी में से बचत करती रहो। पकवान-मिठाई खाने लायक बचत हो जाए तो वह भी खा लेंगे !

कुछ समय बाद बेगम ने अबूबकर की थाली में सचमुच पकवान-मिठाई परोसी। बादशाह अबूबकार आश्चर्य पूर्वक थाली में परोसी वस्तुओं को देखते ही रह गए। बोले, वाह! "कमाल है ! ये पकवान-मिठाई कहां से आई ?"

बेगम ने कहा, "आप ही ने तो कहा था कि बचत करो और खाओ मिठाई-पकवान। मैंने हर महीने आधा दिरहम बचाना शुरू कर दिया। उसी से अब तो सप्ताह-भर पकवान-मिठाई खाई जाएंगी।"

बादशाह अबूबकर ने अगले महीने से दो की जगह डेढ़ दिरहम

वेतन लेना शुरू कर दिया। बेगम से उन्होंने कहा, "जरूरत से ज्यादा वेतन ले रहा था, वरना तुम बचत कैसे करतीं ?"

बेगम को बादशाह की सादगी पर गुस्सा आ रहा था।

विचारे ! आज के छोटे बड़े शासक कि वह जनता के धन पर क्यों मौज करते हैं ?

☆

दावत

'बतायो' सिंध के प्रसिद्ध फकीर थे। एक बार बतायो फकीर फटेहाल एक रईस की दावत में जा पहुंचे। रईस ने बड़े-बड़े लोगों के बीच एक फकीर को देखकर अपमान महसूस किया। उसने उन्हें जलील करके दावतखाने से बाहर भगा दिया। अपमानित बतायो फकीर ने घर जाकर अपने एक रईस रिश्तेदार के कीमती कपड़े व गहने पहने और पूरी सजधज के साथ पुनः उस रईस के दावतखाने में जा पहुंचे।

अपने दावतखाने में एक बहुत बड़े रईस को देखकर वह रईस गर्व से फूला नहीं समाया। उसने न केवल उनका अन्य रईसों से भी ज्यादा स्वागत किया, बल्कि स्वयं अपने हाथों से उन्हें लज़ीज़ भोजन खिलाने के लिये उनके पास बैठ गया। परन्तु ज्योंही उसने बतायो के मुंह की तरफ भोजन बढ़ाया, बतायो चिल्लाये—

'अरे भाई, इस भोजन को खाने का अधिकार इस मुंह को नहीं, बल्कि इन कपड़ों को है, इन्हीं की बदौलत तो मुझे इस दावतखाने में घुसने का मौका मिला है वर्ना अभी थोड़ी देर पहले ही जब मैं इन कपड़ों के बगैर आया था, तो आपने मुझे जलील करके भगा दिया था अतः कृपया आप यह भोजन मेरे मुंह में डालने की बजाय मेरे कपड़ों पर डाल दें।'

रईस का सिर शरम से झुक गया और बतायो फकीर अपने कपड़े झाड़ते हुए उठकर चल दिये।

सत्यार्थ-प्रकाश कृत महर्षि दयानन्द सरस्वती

जीवन निर्माण तथा पाखण्ड, ढोंग आदि को मिटाने के वास्ते पढ़ें। यह ग्रन्थ १४ सम्मुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में जनहित के लिए रचा गया है इनका ब्यौरा इस प्रकार है—

१. प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओङ्कार आदि अनेक नामों की व्याख्या है गुण, कर्म स्वभावानुसार अनेकों नाम हैं।

२. द्वितीय सम्मुल्लास में सन्तानों को शिक्षा।

३. तृतीय सम्मुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठन-पाठन व्यवस्था, सत्य-असत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने पढ़ाने की रीति।

४. चौथे सम्मुल्लास में विवाह और गृहस्थ आश्रम का व्यवहार

५. पांचवें सम्मुल्लास में वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम की विधि संक्षिप्त रूप में ही है।

६. छठे सम्मुल्लास में राजधर्म एवं शासकों के कर्त्तव्यों के बारे में।

७. सातवें समुल्लास में वेद-ईश्वर विषय।

८. अष्टम समुल्लास में जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय।

९. नवम समुल्लास में विद्या-अविद्या बन्धन और मोक्ष की व्याख्या।

१०. दशम समुल्लास में आचार-अनाचार और भक्ष्य अभक्ष्य विषय।

११. एकादश समुल्लास—आर्यवर्त देश में बसने वालों के मत मतान्तर का खण्डन मण्डन विषय।

१२. द्वादश समुल्लास में चारवाक, बौद्ध और जैनमत विषय।

१३. त्र्योदश समुल्लास में ईसाई मत विषय।

१४. चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय।

सभी मतों के ही धर्म ग्रन्थों के प्रमाण देकर लिखा है और समीक्षा भी की गई है।

क्या-क्या यहां व्यर्थ है……विचारें आप

चाहे कितना रूप भरा हो, गंध नहीं तो फूल व्यर्थ हैं।
चाहे जीवन भर मिलन हो, स्नेह नहीं तो मिलन व्यर्थ है।।
उमड़ पड़े न दर्द देख जो, बहुत सुन्दर वह नेत्र व्यर्थ हैं।
छू न सके जो हृदय किसी का, उस रचना का सृजन व्यर्थ है।।
हृदय कभी न जिसे स्वीकारा, उसके सम्मुख नमन व्यथ है।
डाली-डाली जहाँ न पुष्पित, उसको कहना चमन व्यर्थ है।।
कथनी करनी एक नहीं जिसकी, उसे कथावाचक कहना व्यर्थ है।
मानव में मानवता नहीं, तो उसे मानव कहना व्यर्थ है।।
सत पथ का पथिक वही कहाये, जो सत्य पर न चले तो
'पथिक' नाम व्यर्थ है।।

टिप्पणी:—पाठक वही जो पढ़ने पर मनन करता। जब नहीं करता तो भी पढ़ना व्यर्थ है। पढ़कर यदि मनन भी किया यदि आचरण नहीं किया एवं अन्तरात्मा की ध्वनि पर तो आत्म बन्धुओं वह अपना जीवन व्यर्थ नहीं गंवा रहा—विचारिये !

विलक्षण है यह चिंतन छोटा सा

योगेश्वर कृष्ण ने राजनीति द्वारा विश्व का कल्याण करना चाहा परन्तु राजनीति अधूरी है। राजनीति कहती है. "यथा राजा तथा प्रजा"। परन्तु राजनीति से पहले ब्रह्मनीति है। ब्रह्मनीति कहती है, यथा प्रजा तथा राजा, जिस प्रजा का मस्तिष्क विद्या द्वारा परिष्कृत तथा अन्तःकरण सदाचार की शिक्षा से पवित्र हो चुका हो वही राजा का चुनाव कर सकती है नहीं तो भ्रष्टमति प्रजा भ्रष्टाचारी शासक चुनकर और अधिक भ्रष्टाचारी होते-होते एक दिन नष्ट हो जाती है।

(एक मनीषी)

बात पुरानी है, पर एकदम सच्ची और खरी। अरब के खलीफा थे हजरत उमर— बड़े नेकदिल और ईमान-धर्म मानने वाले। खुदा के सच्चे बंदे! हर छोटा बड़ा उनका सम्मान करता था।

एक बार उन्होंने एक सरदार को किसी दूर-दराज का हाकिम बनाने की बात तय की। पता नहीं कैसे, वह उन्हें भा गया था।

पर यह निर्णय ऊपर वाले को मंजूर नहीं था। हुआ यह कि अभी वे सरदार को हुक्मनामा देने ही वाले थे, कि एक छोटा लड़का कूदता-फांदता उनके सामने आकर ठिठक गया। बच्चा तो बच्चा ठहरा! उसके मन की मौज का क्या ठिकाना! वह लगा जोर-जोर से तालियाँ पीटने, उछलने-कूदने— हा-हा! हू-हू' करने।

बस, फिर क्या था? हजरत उमर पर भी बचपना तारी हो गया। वे भी लगे बच्चे से खिलवाड़ करने। उन्होंने पुचकारा, दुलराया और ऊपर उछाल कर उसे अपनी गोद में बैठा लिया। बच्चा था नटखट। उसने हजरत उमर को गुदगुदा भी दिया।

सरदार यह सब देखकर भौचक्का रह गया। उसे बड़ा अटपटा लगा यह सब। उससे खामोश नहीं रहा गया, "जी, ऐसे बच्चे आपसे जरा भी खौफ नहीं खाते। मैंने तो आज तक अपने किसी बच्चे को अपनी गोद में नहीं उठाया। बच्चे तो मेरी आवाज ही सुन कर सिहर उठते हैं—पास आने की बात तो दर किनार!"

पत्थरदिल सरदार की बात सुनकर खलीफा हजरत उमर ने उसे सिर से पैर तक तिरछी नजर से घूरा और एक सांस खींच कर बोले, "या खुदा! तूने मुझे एक गलत आदमी के चुनाव की तोहमत से बचा लिया। कितना बड़ा गुनाह अनजाने में मुझसे होने वाला था। ऐ खुदा तेरा! लाख-लाख शुक्रिया।

फिर खलीफा उमर ने सरदार से कहा, "वाकई तुम इस लायक़ नहीं हो कि मैं तुम्हें हाकिम बनाऊं। जो अपनी औलाद से मोहब्बत नहीं करता, वह जनता से क्या मोहब्बत करेगा ?"

'यज्ञो वै विष्णु'

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने जीवन में हमेशा सुखी रहना चाहता है, दुख से दूर रह कर सुखी रहने की कामना करता है। इसके लिए वह दान, पुन्य व शुभ कर्म करता है। हमारे धर्म शास्त्र मनुष्य की विशेषता बताते हुए कहते हैं कि मनुष्य सदा कर्म करने में स्वतन्त्र है। अर्थात् शुभ कर्म करके वह देव बन सकता है। इसी बात को हमारे वेद शास्त्र भी यही कहते हैं कि—

१—स्वर्ग कामो यज्ञेन ।

२—ईजाना मन्ति स्वर्ग लोकम् ।

३—यज्ञो नै श्रेष्ठतम कर्म ।

इन तीनों कर्मों में यज्ञ ही सर्वं श्रेष्ठ कर्म है। मनुष्य यज्ञ को ग्रहण करके यज्ञमय जीवन बनाकर आनन्दमय व्यतीत कर सकता है। महाऋषि स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश मेंभी लिखा है कि यज्ञ करने वाले को इस लोक में शान्ति तथा परलोक में परमार्थ की सिद्धि प्राप्त होती है। ..... साथ ही धर्म शास्त्रों में यह भी कहा गया है 'यज्ञों हत वर्षा भवति' अर्थात यज्ञ न करने वाला अभागा होता है। इसलिये मनुष्य को यज्ञ करना ही चाहिए। आज दुनिया धन की ओर बड़ी आकर्षित होती जा रही है। मनुष्य किसी न किसी प्रकार से धन प्राप्त करना चाहता है। वेद भगवान कहता है तथा ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में भी हवन यज्ञ की महमा का विस्तार से वर्णन है।

यज्ञ ही विष्णु है हमारे ... भाई भी बताते हैं कि

भगवान विष्णू के चर्ण सदा (मां) लक्ष्मी दबाती हैं। अर्थात् लक्ष्मी (धन) के पीछे भागने से लक्ष्मी (धन) मिले या ना मिले परन्तु भगवान विष्णू नहीं मिलते।.........लेकिन जब यज्ञ से प्यार हो जाता है तो यज्ञ रूपी विष्णू आने पर लक्ष्मी (धन) स्वयं हमारे पास आ जाती है। यज्ञ ही विश्व की नाभि है ऐसा शास्त्रों में लिखा है जैसे मां के गर्भस्थ शिशु को नाभि से सब कुछ आहार रूप में माता की नाभि से ही मिलता है, वैसे ही हवन यज्ञ के द्वारा जड़ चेतन को मिलता है। बढ़ रही वायु प्रदूषण को दूर करने तथा जल व अन्न आदि के बढ़ते प्रदूषण को रोकना है तो सर्वत्र वृद्ध यज्ञ अच्छे घी व सामग्री आदि से करें। विस्तार से जानना चाहें तो पढ़ें यज्ञ पर छपी पुस्तकें या स्वयं यज्ञ करके अनुभव करें।

विमल प्रकाश गुप्ता

भगवान हमें सद्बुद्धि दो!

१–हम तेरे उपासक मांग रहे, भगवान् हमें सद्बुद्धि दो।
हे सविता, मेधा, प्रज्ञा दो, भगवान् हमें सद्बुद्धि दो॥
२–बुद्धि-बल से ही मानव का, उत्कर्ष यथावत् सम्भव है।
गायत्री मन्त्र में माँगा है, भगवान् हमें सद्बुद्धि दो॥
३–हे देव उपास्य, उपासक के, सब पाप दुरित दुःख दूर करो।
हम भद्र कहें, और भद्र सुने, भगवान् हमें सद्बुद्धि दो॥
४–हम भौतिक भोग न मांग रहे, जितने हैं मिले पर्याप्त हैं वे।
जो अन्तः करण-तम परण करे, भगवान् हमें सद्बुद्धि दो॥
५–सद्ज्ञान विवेक समृद्धि दो, तन धन की मन की शुद्धि दो।
सब ऋद्धि, वृद्धि, सिद्धि दो, भगवान् हमें सद्बुद्धि दो॥
६–जीवन क्या है? मृत्यु क्या है? क्यों आये मानव योनि में?
इन गूढ़ रहस्यों को हम समझें, भगवान् हमें सद्बुद्धि दो॥
७–इस पावन वेला में मिलकर, हम यही याचना 'पाल' करें।
भव सागर पार उतरने को, भगवान् हमें सद्बुद्धि दो॥

हा ! हन्त :

हे ईश्वर तूने ये क्या किया ? खिले फूल मुरझाते ही हैं समय पर परन्तु दुख तो यही कि कली रूप में ही मुरझा गई ! — हे परम प्यारे प्रभु आपने हमें यह कली ही क्यों दी जो तनिक सा ही खिल कर मुरझा गई ? माना कि जन्म-जीवन-मृत्यु का चक्र है। यही दुनिया का नियम है।

आह ! हा—अफसोस है कि दाता आपने मधुर प्रिय कली देकर भी खिलने से पूर्व ही हम से अपने नियमों एवं हमारे ही कर्मों के अनुसार वापस बुला ली, मानवी अल्पज्ञता के कारण बस यही कामना है। कि जहां भी भेजी वहीं यह खिले व सुगन्ध दे।

हां कुछ फूल ही पूर्ण रूप से खिल कर भरपूर सुगन्ध दे पाते हैं। परन्तु अफसोस कुछ कलियां खिलते ही क्यों मुरझा जाती हैं ?

पायल रूपी एक कली थी जिसकी महक न ले सका विशेषकर उसका परिवार माता मंजु गुप्ता, पिता विमल गुप्ता व भाई प्रभात गुप्ता आदि अपने मन के स्वप्नो को साकार भी न कर पाये ··· क्योंकि इतना ही सम्बन्ध था इनका उस दिव्य आत्मा से।

प्रिय पायल की मधुर स्मृति बनाये रखने के लिये माता-पिता व भाई आदि ने जो संकल्प किया है उसी को साकार रूप देने हेतु आपके कर कमलों में ये कहानियां व भजन आदि प्रस्तुत हैं। परिवार की ओर से समयानुसार कुछ जन सेवायें हुई तथा होती रहेगी।

राम गयो, रावण गयो, जाके बहु परिवार।
नानक चिर कुछ है नहीं, स्वापन ज्यों संसार।।

विमल प्रकाश गुप्ता (मोमबत्ती वाले)
२९८-कृष्णापुरी, मुजफ्फरनगर

छोटी बात : बड़ा अर्थ : दशरथ कौन ?

एक रामायण विशारद रामचरित मानस के पात्रों की चर्चा करते हुए कह रहे थे कि मानस के प्रत्येक पात्र के नाम का एक अर्थ है और उस अर्थ का मानव समाज और मानव-कल्याण से गहरा सम्बन्ध है।

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि दशरथ वह व्यक्ति है जो अपनी दसों इन्द्रियों के रथ पर आरूढ़ हो सके और उस पर नियन्त्रण रख सके अर्थात् जो जितेन्द्रिय हो सके वही दशरथ हो सकता है।

आज हर व्यक्ति की कामना यही होती है कि उसका पुत्र राम जैसा हो मगर यह कोई नहीं सोचता कि राम जैसा पुत्र तो उसी पिता का हो सकता है जो स्वयं दशरथ जैसा जितेन्द्रिय हो।

जो जानता है वह बोलता नहीं।

महात्मा बुद्ध जब प्रतीक्षा कर रहे अपने श्रद्धालुओं के बीच पहुंचे तो उनके हाथ में एक गुलाब का फूल था। श्रद्धालुओं का ख्याल था कि यह फूल उन्हें किसी श्रद्धालु ने रास्ते में भेंट किया होगा। बहरहाल महात्मा बुद्ध आए, आसन पर बैठ गये, उस फूल को निहारते रहे. कई घंटे बीत गए मगर वह बोले नहीं। ज्यों-ज्यों उनके मौन की अवधि बढ़ती जाती थी श्रद्धालुओं की बेचैनी बढ़ती चली जा रही थी।

अंततः महाकश्यप से नहीं रहा गया। वह बड़े जोर से हंसे और तब तक हंसते ही चले गये जब तक बुद्ध ने उठ कर उन्हें गले से नहीं लगा लिया। महाकश्यप को गले लगा कर बुद्ध वह गुलाब का फूल उन्हें देते हुए बोले, "जो कुछ बाकी लोग मेरी वाणी से नहीं ले पाए, वह आज तुमने मेरे मौन से लिया है—वस्तुतः ज्ञान की कुंजी के अधिकारी तुम हो गये हो।"

सच है जो कुछ है। अर्थात् जो जानता है वह बोलता नहीं और जो बोलता है, वह जानता नहीं।

दृष्टि—सम्पन्न लोग

एक दिन मिथिला नरेश ने गोनू झा से पूछा—"गोनू झा, आपकी नजर में संसार में कितने प्रतिशत लोग दृष्टि-सम्पन्न होंगे ?"

उन्होंने सहजता से कहा, "महाराज. मुझे तो लगता है कि संसार में मेरे सिवाय सभी दृष्टिहीन ही हैं।"

राजा ने चौंकते हुए पूछा, "क्या मैं भी आपको दृष्टिहीन ही दिखता हूँ ?"

उन्होंने सहमते हुए कहा. "महाराज, अगर दो-चार दिनों की मोहलत दें तो सही उत्तर दे सकूंगा।"

दूसरे ही दिन राजा शिकार करने निकला। गोनू झा को यह खबर मिलते ही वे राजा के मार्ग में एक जगह रस्सी बटने लगे। उन्हें यह करते देख उधर से गुजारता वह पूछता—' गोनू झा यह क्या कर रहे हैं ?"

वे सबको जवाब देकर नोट करते जाते थे। राजा ने भी रुक कर पूछा. "गोनू झा आप क्या कर रहे हैं ?"

वे राजा को भी उत्तर देकर नाम नोट करने लगे। राजा ने फिर प्रश्न किया, "अब क्या कर रहे हैं ?"

उन्होने सहजता से कहा, "महाराज, दृष्टिहीनों की सूची बना रहा हूं। इसमें आपका नाम भी दर्ज हो गया है।"

राजा ने झुंझलाते हुए कहा, "वो कैसे ?"

उन्होंने उत्तर दिया, "अगर आप देखते तो यह नहीं पूछते कि मैं क्या कर रहा हूँ ?"

महाराज ने गोनू झा की बुद्धिमत्ता से प्रभावित होकर अनेक उपहार दिये।

लघु कथा

स्वामी सन्तोषानन्द (पूर्व नाम दयाराम) तथा राम प्यारी का जन्म एक ही ग्राम, एक ही मोहल्ले में एक वर्ष आगे पीछे हुआ था। समय आने पर राम प्यारी का विवाह दूर के एक ग्राम में हो गया। स्वामी जी ने विवाह कराया वैराग्य व ईश्वर भक्ति से, तो हो गये रमते राम, परन्तु बचपन के खेल-कूद, संग पढ़ाई आदि से दोनों में भाई-बहन सा प्यार बना रहा तो देवी जी कभी कभार

भोजन व वस्त्र आदि से भी सेवा करती रहती और सत्संग भी।

देव योग से स्वामी जी के जीवन के अन्तिम २० वर्ष देवी जी की ससुराल वाले ग्राम में ही बीते तो प्रातः एक ही प्रश्न पूछती– स्वामी जी आपको तो स्वर्ग (मुक्ति) ही मिलेगी, तो हंसते हुए उत्तर मिलता था कि वहन जी—क्या पता ?

उसका भरया जानिये, जेहड़ा तोड़ चढ़े।

दोनों बचपन के साथी थे ही, देवी जी हंसमुख थी, बस वही प्रश्न वार-२ करतीं, प्राय उत्तर भी वही मिलता था स्वामी जी रोग शय्या पर थे, अब बचने की सम्भावना भी न रही तो देवी जी अपने प्रश्न का उत्तर लेने सन्त निवास पर पहुंच गई।

स्वामी जी आपको मुक्ति मिलेगी ही। मेरा प्रश्न क्या बना ही रहेगा हसते हुए स्वामी जी बोले अच्छा शान्ति से बैठ जा, घंटा आध घंटा यहीं पर, अब दूंगा उत्तर।

अन्तर मुख होकर स्वामी जी ने अपने सम्पूर्ण जीवन पर गम्भीरता से दृष्टि डाली, तो सन्तोष से बोले वहन जी, प्रभु की लीला, न्याय व्यवस्था बड़ी अद्भुत व विचित्र है। कोई भी नहीं जानता किसे किस कर्म का फल, इस जीवन में या अगले जन्म में कब मिलता है। किस जन्म का कर्म फल किस जन्म में मिले ? हां, इस जीवन के कर्मानुसार तो स्वर्ग प्राप्ति की ही आशा है। परन्तु पूर्व जन्म के खोटे कर्मों से स्वर्ग नहीं भी मिल सकता ?

राम प्यारी ने वही बचपन की हंसी में कहा, चलो अगले जन्म में उत्तर देना, बस जाते समय जरा मेरे जीवन पर भी योग दृष्टि से देखने का कष्ट करो, मेरी आप से भेंट कहां पर होगी ?

देवी जी भेंट होगी और जरूर होगी क्योंकि आत्मा अमर है, प्रभु की न्याय व्यवस्था भी अटल है। फिर तेरा जीवन शुद्ध, पवित्र

गंगाजल जैसा निर्मल है, तो गंगा यमुना का संगम क्यों नहीं होगा ? पास बैठे सभी सज्जन हंस पड़े।

अत्म बन्धुओं उपरोक्त कथा का भाव तो आप समझ ही गये होंगे, हाँ अन्त में आप सबसे यही नम्र निवेदन है कि—

वह पथ क्या पथिक कुशलता का, जिस पथ में बिखरे शूल न हों।
नाविक की धैर्य परीक्षा क्या ? जब धारा ही प्रतिकूल न हो।।
क्या करेगा प्यार वह भगवान से ? कर न पाया प्यार जो ईमान से।
जन्म लेकर गोद में इन्सान की, कर न पाया प्यार जो इन्सान से।।

प्रभु ने तो कर्मानुसार ही फल देना ही है। बस आपसे यही आशीर्वाद चाहता हूं कि वह देह, अन्त तक किसी से सेवा न लेकर किसी की सेवा में ही लगी रहे। बस और कुछ चाह नहीं इस पथिक की, वैसे हम सभी पथिक ही तो हैं।

चिन्तन .... मानव मात्र वास्ते

हमारी शक्ति का प्रयोग भाषण में, लेखनी में तो हुआ, कर्म में नहीं, हमने आदर (सम्मान) भी दिया वक्ता व लेखक को, कर्म को नहीं। महर्षियों के (सन्तों के) जीवन में कर्म प्रथम था, भाषण बाद में। उन्होंने अपने जीवन को ही पहले रंगा, दूसरों को रंगने के लिए भाषण पीछे किये। आजकल कैसे हैं कथा वाचक आप जानें ?

ऋषियों का प्रमुख कर्म था वैदिक संस्कृति और सभ्यता की स्थापना। यह कार्य हम अब सदाचार की आधारशिला की स्थापना से कर सकते हैं और उसके लिए हमें दिव्य आत्म शक्ति को प्राप्त करना (आर्य ग्रन्थों के स्वाध्याय व ईश्वरोपासना द्वारा)

—स्व० स्वामी आत्मानन्द सरस्वती

छोटी बात : बड़ा अर्थ सत्संग का फल

महर्षि विश्वामित्र जी ने ६० हजार वर्ष तक तप किया और उस तप के तीस हजार वर्षों का पुण्य फल महर्षि वशिष्ठ को दक्षिणा के रूप में दे दिया। महर्षि वशिष्ठ ने वह दक्षिणा स्वीकार करने के बाद एक पल के सत्संग का फल महर्षि विश्वामित्र को आशीर्वाद के रूप में दिया।

महर्षि विश्वामित्र को दक्षिणा के बदले में मिला आशीर्वाद बहुत कम लगा और उन्होंने इस पर आपत्ति की। तय यह पाया कि समस्या के समाधान के लिए भोले भंडारी शिव जी के पास चला जाए। शिव जी ने समस्या सुनी तो विश्वामित्र के क्रोध के डर से वह इन दोनों ऋषियों को ब्रह्मा जी के पास ले गये और ब्रह्मा जी भी विश्वामित्र के कोप से डर कर निर्णय के लिए शिव जी और दोनों ऋषियों को लेकर श्री हरि विष्णु के पास जा पहुंचे तथा श्री हरि विष्णु ने यह समस्या समाधान के लिए शेषनाग को सौंप दी।

शेषनाग विश्वामित्र से बोले, "जलपान करने के बाद मैं आपकी समस्या का समाधान करूंगा आप तीस हजार वर्ष की तपस्या के फल का आसन ग्रहण करके तब तक मेरे सिर पर टिको पृथ्वी का भार सम्भाल लीजिए।" विश्वामित्र प्रयत्न करने पर भी पृथ्वी का भार सम्भाल नहीं सके और वह डगमगाने लगी। शेषनाग ने कहा कि आप वशिष्ठ जी से अपनी तीस हजार वर्ष की तपस्या का पुण्य फल वापस लेकर ६० हजार वर्षों की तपस्या के पुण्य फल का आसन ग्रहण कीजिए और पृथ्वी का भार सम्भाल लीजिए परन्तु इस आसन पर भी विश्वामित्र पृथ्वी का भार वहन नहीं कर सके। अंत में शेषनाग बोले, "अब आप एक पल के सत्संग के पुण्य फल का आसन ग्रहण करके पृथ्वी का भार उठाइए।

इस पर पृथ्वी डगमगाई नहीं, टिक गई। एक पल के सत्संग का फल विश्वामित्र की समझ में आ गया और वशिष्ठ के चरणों में नतमस्तक होकर उनसे क्षमा याचना की। संत शिरोमणि तुलसी दास ने ठीक ही कहा है कि :

सुत, दारा और लक्ष्मी पापी के भी होय ?
संत समागम हरि कथा तुलसी दुर्लभ होय !

बुद्धि जीवी–विवेकशील विचारें ! ध्यान से सत्संग का फल पढ़ा तो विचारें बार २ आप ताकि आप सच्चे विवेकशील कहायें।

सत्संग (कथा) प्रवचनों में कहीं-कहीं दिल दिमाग को ताला लगाने का पूर्ण रूप से प्रयास होते हैं जैसे उपरोक्त गाथा में है। जैसे साठ हजार वर्ष तप करना, शिव ब्रह्मा विष्णु और शेषनाग के प्रसंग पर विचारें। विज्ञान सिद्ध करता कि सूर्य के चारों ओर धरती घूमती है फिर शेष नाग पर कैसे टिकी है धरती ? कुछ कहते हैं बैल के सींग पर टिकी है।

धर्म के नाम पर कौन हमें अविवेकहीन बनाता ? तर्क युक्ति, प्रमाण, विवेक पूर्वक बात न कहो। मुंह पर ताला लगाओ, क्या ठीक है, आत्म बन्धुओ ?

उदाहरण रूप एक ही का संकेत किया आशा संग विश्वास है आप भविष्य में सत्य का संग करेंगे ही परन्तु कूप-मंडूक न रहेंगे क्योंकि बुद्धिमान आप हैं। आप में विवेकशीलता व जागरुकता भी रहनी चाहिए विशेषकर धर्म के नाम पर।

पंजाब केसरी पत्र में छपते हैं प्राय: कहयो पर बहुतों को संशय होते होंगे क्योंकि भ्रमयुक्त हैं कुछ ?

ओ३म्

एक मनीषी ने कहा था !

जग में रहकर जग वालों की राय विचारों के ही अनुसार काम

करना, और एकान्त में रहकर अपनी इच्छानुसार काम करना क्या आसान है। वास्तव में महापुरुष वही हैं जो सबके मध्य में रहकर भी पूर्ण माधुर्य के साथ एकान्तवास की स्वतन्त्रता का उपयोग करता है एव अपनी शान्ती अपनी मुट्ठी में रखता है।

स्वतन्त्रता का मूल्य

महान दार्शनिक आर्चिवाल्ड ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा है—'बचपन में जब मैं कैरोलिना में था, तभी एक ऐसी घटना घटी कि मेरा पिंजरे में चिड़िया पालने का शौक सदा के लिए मिट गया। एक दिन देवदार के वृक्ष पर एक चिड़िया का चूजा बैठा गा रहा था। लेकिन इतने भर से मुझे खुशी नहीं हुई। मैंने पेड़ पर चढ़कर उसे पकड़ा और लाकर उसे पिंजरे में बंद कर दिया। दो दिन पिंजरे में बंद रहने के बाद मैंने देखा कि उस बच्चे की मां अपनी चोंच में खाना लिए पिंजरे के चारों ओर चक्कर लगा रही थी। मुझे यह देखकर बहुत खुशी हुई, क्योंकि मैं जानता था कि मेरी अपेक्षा पक्षी की–माँ को अपने बच्चे को खिलाने का ज्यादा शऊर है। लेकिन दूसरे दिन सवेरे मैंने देखा कि पिंजरे के भीतर चिड़िया का बच्चा मरा पड़ा है।

मैंने यह बात पक्षीतत्व–विशारद आर्थर वेन को बतलाई, तो उन्होंने कहा—'बच्चे की मां अपनी सन्तान को पिंजरे में बंद, कदी की हालत में नहीं देख सकती। वह बीच-बीच में जहरीले फल लाकर उसे खिला देती है, जिससे बच्चे मर जाते हैं। उनकी धारणा है कि बन्दी अवस्था में बच्चे के जीवित रहने से उसकी मृत्यु अच्छी है।'

ओ३म्

नाम काम से जिन्दा रहता है

दम्पत्ति एक सन्त की कुटिया में पहुंचते ही चरणों में गिर

पड़े, उठने का नाम न लेते थे, महात्मा जी के बार-बार कहने पर पर उठे तो चेहरे पर थी चिन्ताओं की उमड़ती रेखायें, भक्त राज भरी जवानी संग धन वैभव आदि से सम्पन्नता फिर चिन्ता क्यों ?

४ बेटियां हैं बेटे वास्ते अनथक प्रयास किये, सब व्यर्थ। अब पुत्र रतन का आशीर्वाद चाहते हैं हम आपसे।

मुस्कराते हुए सन्त जी ने कहा पुत्र चाहिए न आपको. उसकी प्राप्ति से पूर्व मेरे विचारों (प्रश्नो) का उत्तर अभी दोगे तो चिन्ताओं से मुक्ति मिलेगी।

शंकराचार्य व गोस्वामी तुलसीदास जी के, सूरदास के, विरजानन्द के, महर्षि दयानन्द के कितने पुत्र, पौत्र थे ?

भगवान राम तथा श्री कृष्ण जी का नाम क्या उनके पुत्रों के कारण है अथवा उनके ही दिव्य कर्मों के कारण हुआ ?

याद रखो पुत्र से नाम नहीं चलता स्व शुभ कर्मों से नाम चलता है। भक्त स्व कर्मों पर विचारो, चिन्तन करना है किये कर्मों पर नहीं, भविष्य में सुकर्मों को करने से। ★

तीन बातें

तीन वस्तुएं मनुष्य को एक बार मिलती हैं माता-पिता, हुस्न, जवानी
तीन वस्तुएं हमेशा दिल में रखें दया, क्षमा, नम्रता
तीन वस्तुएं कभी छोटी न समझें दुश्मन, कर्जा, बीमारी
तीन वस्तुएं किसी का इन्तजार नहीं करती समय, मृत्यु, ग्राहक
तीन वस्तुए भाई-भाई को दुश्मन बना देती हैं दौलत, औरत, जमीन
तीन वस्तुए पर्दा चाहती हैं खाना, दौलत, औरत
तीन वस्तुएं याद रखना आवश्यक है सच्चाई, फर्ज, मृत्यु
तीन वस्तुएं मनुष्य को जलील करती हैं चोरी, झूठ, चुगली
ईश्वर, जीव, प्रकृति अनादि हैं, ससार का आधार भी यही तीन हैं ★

बात छोटी, अर्थ बड़ा :-

मेरा घर

दृष्टान्त या कहानी के रूप में कही बात का अपना ही महत्व है।

पशु पक्षी, कीट-पतंगे भी एक स्थान पर विश्रामार्थ समय बिताते हैं, भले ही कहने को बन्दर घर नहीं बनाता फिर भी एक निश्चित स्थान पर रात्रि बिताता है। सब उसी को घर मानते हैं।

सीख उसको ही दीजिए, जाको सीख सहाय।
बन्दर को सीख न दीजिए, जो वऊआ का घर ढाय॥

एक युवक को कक्षा १० के प्रश्न-पत्र में मेरा घर पर एक निबन्ध लिखने को कहा गया। सरलतम प्रश्न जानकर सर्वप्रथम इस पर लिखने लगा। परन्तु तीन घन्टे विचार पूर्वक लिखता रहा कि घन्टी बजने पर अधूरा उत्तर ही देकर घर पहुंचा। तब से वह सोचता ही रहा कि मेरा घर है कहां ? वास्तव में:—

कहां से आया ? कहां जाना ? उसी युवक के जब सारे बाल सुफेद हो गये थे तो किसी ने पूछा, आपका घर कहां है ?

साठ वर्ष पूर्व के प्रश्न का उत्तर फिर पूछा गया। तो उस वृद्ध ने हाथ जोड़कर कहा, तब से ही तो उत्तर खोज रहा हूं भगवन् गृहस्थी भी न बसायी। इस प्रश्न के चक्कर में रहा, भला यह देह भी आत्मा का घर ही तो है, परन्तु मेरा घर तो नहीं, क्योंकि छोड़ना है इसे भी एक दिन जबकि बाप-दादा के घर जन्म लिया था।

आप ही उत्तर दें कि मेरा घर है कहां ? यही चाहता हूं आप से। पूर्व कौनसी देह रूपी घर से आया हूं और कौन से घर में जाना है ? एवं कौन सी देह, फिर कहां मिलेगी ? क्या कोई उत्तर देगा बुद्धि जीवी ?

-: आशीर्वाद दीजिए महाराज :-

युद्ध के नगारे दोनों पक्षों ने बजा दिये थे, पहल कौन करे ? यही सोच थी, कि युधिष्ठिर नंगे पांव हाथ जोड़े, गर्दन झुकाये हुए चले जा रहे थे शत्रु सेना की ओर, दोनों ओर स्तब्धा छा गई। जितने मुंह उतनी बातें।

पूज्य भीष्म पितामह जी के चरण छूते ही आशीर्वाद मांगा धर्म पुत्र ने, पीठ पर दोनों हाथ फेरते हुए तथा सर पर भी यह कहा कि विजय श्री आपके ही चरण छुवेगी बेटे।

ऐसा ही अन्य गुरुजनों से प्राप्त किया आशीर्वाद युधिष्ठिर ने।

दुर्योधन लाल नेत्र किये बड़े ही क्रोध से बोला शत्रु को यह आशीर्वाद कैसा ?

बेटे आपको भी यही करना चाहिए था, चलो अब भी जाओ श्री युधिष्ठिर जी के चरणों में तो मेरे जैसा आशीर्वाद ही मिलेगा तुम्हें भी। ऊं हूं. मैं जाऊं शत्रु से आशीर्वाद लेने को। बेटे अहंकार त्यागकर मिलता है आशीर्वाद। युधिष्ठिर ने स्वयं आकर पाया पर तुम्हें समझाने पर भी अकल नहीं आती तो फिर विजय किसकी, स्वयं विचारो ?

आज की युवा पीढ़ी को भी आशीर्वाद पाना चाहिए बड़ों का धर्मपुत्र की भांति।

जैसी करनी वैसा फल, आज नहीं तो निश्चय कल।

[illegible] प्रिंटर्स, दक्ष प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर फोन : 433941